

उ. हाँ, ये सब धीरे-धीरे हो जाएगा। आजकल लेखन कुछ इस तरह से ही चलने लगा है। ये सब मुख्यधारा में लगभग आ ही गए हैं।

प्र. आपकी रचनाओं में लोकभाषा और संस्कृति की महक मिलती है लेकिन आज सारा विश्व ग्लोबलाइज हो गया है। ऐसे में लोकभाषा और संस्कृति की क्या प्रासंगिकता है ?

उ. आज हम जिस वैश्वीकृत समय में जी रहे हैं उसमें सारे विश्व पर अंग्रेजी हावी है तो क्यों न हम अपनी भाषा को समृद्ध कर अपनी पहचान बनाएँ अन्यथा प्रादेशिक भाषाओं के साथ राष्ट्रभाषा भी खत्म हो जाएगी। दूसरा, भाषा और संस्कृति का गहरा संबंध होता है। भाषा जाती है तो संस्कृति भी खत्म हो जाती है। अब अंग्रेजी में तो हमारी संस्कृति नहीं है। वे हमारे मूल्य नहीं हैं। उनका विचार-दर्शन और संस्कृति अलग है। इसलिए अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए भाषा का बहुत महत्व है। मैं मातृभाषा (कश्मीरी) तक सीमित नहीं हूँ। मैं तो राष्ट्रभाषा को समर्पित हूँ। एक अंग्रेजी विद्वान टॉमस एल फ्रीडमैन ने कहा है कि आधुनिक तकनीक आपको दुनियाभर की बातें बताती है, ज्ञान देती है पर वह आपको एक अच्छा मनुष्य नहीं बना सकती। इस ज्ञान के विस्फोट से आप अच्छा भाई, पड़ोसी, बेटा-बेटी नहीं बन सकते। उसमें वो ताकत ही नहीं है। यह तकनीकी विश्व व्यापार की बात करेगी पर इंसानियत की बात नहीं करेगी। इसलिए सेव योअर ओलिव ट्री। यानि तुम्हारे आंगन में पूर्वजों ने एक ओलिव ट्री लगाया है उसकी रक्षा करो। वो पेड़ कौन-सा है? वो लोकभाषा और लोकसंस्कृति का पेड़ है। इसीलिए अपने आपको बचाने के लिए अपनी संस्कृति को बचाना जरूरी है। वरना भूमण्डलीकरण की इस आँधी में सब कुछ बहा जा रहा है। अंग्रेजी में एक कहावत है कुकीज कटर कल्चर अर्थात् अच्छा-बुरा सब एक जैसा हो जाएगा। अच्छा कुछ बचेगा ही नहीं। तुम्हारी भाषा, संस्कृति, अस्मिता बचेगी ही

नहीं। तुम कौन हो, क्या हो, तुम्हारा वजूद, तुम्हारे मूल्य क्या हैं....? वे सब खत्म हो जाएंगे। इसीलिए अपनी भाषा और संस्कृति दोनों को बचाना जरूरी है।

प्र. आपके पिता प्रो. रामचन्द्र पंडित ने अंग्रेजी के प्रोफेसर होते हुए भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार की मुहिम चलाई थी। उस संदर्भ में आप अपना क्या योगदान मानती हैं?

उ. हाँ, मेरे पिताजी की इच्छा थी। उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत के प्रति लगाव था। उन्हें भाषा ज्ञान था पर चूँकि कश्मीर में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का माहौल नहीं था। पिता जी कश्मीर में हिन्दी प्रचारकों में रहे हैं। इसी कारण उन्होंने मुझे और मेरी दीदी को ओरियंटल कॉलेज भेजा, जहाँ हमने रत्नभूषण, प्रभाकर की शिक्षा ली। फिर मैंने एम.ए हिन्दी किया। यहीं से मेरी रुचि हिन्दी के प्रति जागी। महादेवी, पंत, प्रसाद मुझे बहुत पसंद आए। पंत जी कहते हैं-छोड़ दुमों की मृदुल छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया। बोल तेरे बाल-जाल में, मैं कैसे उलझा दूँ लोचन। और ए नभ की दीपावलियों क्षण भर के लिए तुम बुझ जाना, मधुर-मधुर मेरे दीपक जल, प्रिय का पथ आलोकित कर। जहाँ तक योगदान की बात है तो मैं जहाँ भी गई मैंने हिन्दी को अपनाया। जैसे हैदराबाद हिन्दीतर प्रदेश है वहाँ मैंने मुनीन्द्र जी ने, नेपाल सिंह वर्मा ने और ओमप्रकाश निर्मल ने साथ मिलकर एक लेखक संघ की स्थापना की जो आज भी चल रहा है। इसमें हिन्दी की गोष्ठियाँ होती थी। कविताएँ, कहानियाँ पढ़ते थे तो इससे हिन्दी का प्रचार-प्रसार होता है। मैं जहाँ भी जाती हूँ हिन्दी में और हिन्दी की ही बात करती हूँ। बहुत सारे लोग वाट्सअप और फेसबुक पर हिन्दी को रोमन स्क्रिप्ट में लिखते हैं तो मैं बड़ा विरोध करती हूँ कि जब मैं हिन्दी में लिख सकती हूँ तो तुम क्यों नहीं लिख सकते। वास्तव में हमारी भावना हिन्दी के प्रति होनी चाहिए और ये बात भी सही है कि जो हिन्दी को अपनी बपौती

समझते हैं अपनी मातृभाषा कहते हैं वही सबसे ज्यादा इसके साथ गलत करते हैं। अपनी भाषा के प्रति आपका प्रेम होना चाहिए। दिल्ली में ही अभिव्यक्ति नाम की स्वायत्त संस्था है जिससे मैं जुड़ी हूँ। लक्ष्मी जैन जी ने अपनी पत्नी कुंथा जैन की स्मृति में यह संस्था स्थापित की थी। इसे 25 वर्ष हो गए। इसमें हम हर महीने एक गोष्ठी करते हैं। इससे पहले हम किसी भी अच्छे रचनाकार की एक कृति कविता, कहानी, नाटक या उपन्यास को खरीदकर सभी पढ़ते हैं फिर विचार-विमर्श के लिए उस रचनाकार को बुलाते हैं। इससे लेखक-पाठक संवाद भी होता है, साहित्य का प्रचार-प्रसार होता है और साहित्यिक समझ भी बढ़ती है। गुरुग्राम में भी हमने हमकलम नाम की संस्था बनाई है। इसमें भी हम साहित्यिक और सामाजिक लोगों को बुलाते हैं। आप लोगों को भी कॉलेज और स्कूल स्तर पर ऐसे कार्यक्रम करने चाहिए। निर्मल वर्मा ने कहा है-साहित्य मनुष्यता का घर है, साहित्य मानवता सिखाता है। हम कितना सीखते हैं यह दूसरी बात है पर साहित्य के प्रचार-प्रसार का प्रयास होना ही चाहिए।

प्र. आजकल दवेन्टी-दवेन्टी का जमाना का जमाना है और लम्बी रचनाएँ पढ़ने का साहस और समय पाठकों के पास नहीं है, ऐसे में लम्बी रचनाओं-उपन्यास और कहानियों का भविष्य कैसा होगा ?

उ. ये ठीक है कि आजकल इतना धैर्य नहीं है अगर मैंने 600 पन्नों का कथा सतीसर लिखा तो इसके पीछे बहुत बड़ा कारण है। हमारी एक भरी-पूरी सामासिक संस्कृति का विखण्डन हुआ तो मुझे उसका पूरा इतिहास लिखना पड़ा। आप उसे सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक तीनों का परिवर्तन कब, क्या, कैसे हुआ का विवरण कह सकते हैं। कश्मीर के भीतर का सच अनावृत हो प्रदेशवासियों के स्वप्न, स्मृतियाँ और उम्मीदें नष्ट न हों और मनुष्यता बची रहे यही मेरा प्रयास था। और